International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.11 No.2 Nov-Dec 2023

प्राचीन भारत में लोकतंत्रः संस्कृत साहित्य में लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

कु. प्रतिभा[1], प्रो. जगमीत सिंह बावा[2]
[1](शोधार्थी), राजनीति विज्ञान विभाग,हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला
[2](विभागाध्यक्ष), राजनीति विज्ञान विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला
Corresponding Author – कु. प्रतिभा
मेल आईडी–pratibhachauhan0411@gmail.com
DOI-10.5281/zenodo.10565950

शोध सार–

प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथ प्रारंभिक भारतीय समाज में लोकतांत्रिक आदर्शों की व्यापकता के बारे में बहुमूल्य अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं । प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य में मूल रूप से वेद, रामायण तथा महाभारत के संदर्भों से भारत में लोकतन्त्रात्मक प्रकार के शासन के अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते है, जिसमें लोकतन्त्रात्मक शासन को स्थापित करने और उसको संचालित करने की अनेकों विधियों का वर्णन मिलता है। इन्ही संस्कृत ग्रंथों को आधार मानकर इस शोध पत्र के माध्यम से भारतीय संस्कृत ग्रंथों में वर्णित लोकतंत्र के सूत्रों का विश्लेषण किया जाएगा। महाकाव्य महाभारत में लोकतन्त्रात्मक राज्य के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों और आंतरिक संचालन हेतु विभिन्न प्रकार के मंत्रालयों, सैन्य संचालन व्यवस्था, मंत्रणा के प्रकार आदि का विशद वर्णन परिलक्षित होता है। महाकाव्य महाभारत खुली परिचर्चा के माध्यम से शासकों को चुनने की प्रक्रिया को दर्शाता है। शासकों के चुनाव में जानता की राय के महत्व को रेखांकित करते हुए इस प्रकार के अन्य उदाहरणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत शोध पत्र में किया जाएगा।

संकेत शब्द– भारतीय संस्कृत साहित्य, लोकतंत्र, महाकाव्य महाभारत, गणराज्य, संघबद्ध राज्य

प्रस्तावना–

जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन ही लोकतंत्र हैं अब्राहम लिंकन की यह परिभाषा लोकतंत्र के सभी उद्देश्यो को स्वयं में समाहित किये हुए हैं। लोकतंत्र का लोककल्याणकारी भाव ही उसको अन्य व्यवस्थाओ से श्रेष्ठ बनाता हैं। लोकतंत्र का यह लोककल्याणकारी भाव प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य में भी परिपूर्णता के साथ दर्शित होता हैं, जिसमें जनहित और जनमत को आधार मानकर ही राज्य व्यवहार करता है। वास्तविक कार्यपालिका किसके हाथो में है और वह उसका किस प्रकार प्रयोग करता हैं यही लोकतंत्र का आधार हैं। वर्तमान लोकतंत्रात्मक अवधारणा में स्वतंत्रता, समानता, न्याय, निर्वाचन पद्धति आदि महत्वपूर्ण हो गया हैं।[1]

इसी प्रकार प्राचीन भारतीय ग्रंथो में भी न्याय, समानता, लोककल्याण आदि को मूल उद्देश्य में रखकर ही शासन व्यवस्था का संचालन किया जाता था। यही वो तत्व हैं जो भारतीय संस्कृत ग्रंथो यथा ऋग्वेद, कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र, रामायण और महाभारत आदि में दर्शित होते हैं। इन्ही के आधार पर भारत सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के साथ–साथ सबसे पुराना लोकतंत्र होने का भी दावा विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करता हैं।[2] भारतीय समाज प्राचीन काल से ही शासन के लोकतांत्रिक स्वरुप से परिचित रहा हैं। यही कारण हैं कि स्वतंत्रता के उपरांत भारतीयों ने भी सरलता से लोकतंत्र को स्वयं में आत्मसात कर लिया हैं और लोकतंत्रात्मक प्रकार की सरकार को भारत में अपार सफलता मिली हैं।[3] जब हम प्राचीन भारतीय ग्रंथो का गहन विश्लेषण करते हैं तो यह पाते हैं कि प्रजा पर शासन करने की भारतीय परम्परा प्रारम्भ से ही लोककल्याणकारी रही हैं जो उसकी मूलभूत विशेषता है। इस शोध पत्र में संस्कृत ग्रंथो ऋग्वेद, कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र आदि से प्रेरणा लेते हुए मूल रूप से महाभारत में वर्णित लोकतंत्र के स्वरुप को व्याख्यायित और विश्लेषित किया गया है। महाभारत में गणतंत्र के संचालन हेतु किस प्रकार शासन करना चाहिए उसका वर्णन इस शोध पत्र में किया गया है।

लोकतंत्र का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

लोकतंत्र की जड़ें मानव इतिहास में बहुत गहरी हैं, विभिन्न सभ्यताओं ने इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें से प्राचीन भारतीय उपमहाद्वीप एक अद्वितीय स्थान रखता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली को लोकतांत्रिक सिद्धांतों का खजाना कहना भी आतिशयोक्ति नही होगा। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में राज्य और राजव्यवस्था के संचालन के संदर्भ में जिस प्रकार के ज्ञान का संकलन मिलता हैं, उसको किसी भी स्तर पर नकारा नही जा सकता। देश के समृद्ध ऐतिहासिक संदर्भ और योगदान ने लोकतांत्रिक सिद्धांतों के विकास को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य विश्व का उत्कृष्ट कोटि का साहित्य हैं, जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य आदि सभी विषयों पर ज्ञान का अद्वितीय संकलन मिलता हैं। वैदिक युग से लेकर आज तक भारत के प्राचीन ग्रंथों, दर्शन और ऐतिहासिक प्रथाओं ने लोकतांत्रिक आदर्शों की एक समृद्ध श्रृंखला बुनी है। प्राचीन भारत में लोकतंत्र की अवधारणा विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक संरचनाओं और प्रथाओं के माध्यम से प्रकट हुई। ऋग्वेद जैसे प्रारंभिक वैदिक ग्रंथों में "सभा" और "समिति" के नाम से ज्ञात सभाओं का उल्लेख मिलता है। इन सभाओं के माध्यम से समुदाय के सदस्यों में आपस में विभिन्न विषयों पर चर्चा, परिचर्चा और आम सहमति बनाने की प्रवृति विकसित हुई, जिससे सामूहिक निर्णय लेने का एक रूप प्रदर्शित हुआ जो लोकतांत्रिक सिद्धांतों को प्रतिध्वनित करता था।[4] वेदों और उपनिषदों सहित अन्य प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथ जैसे रामचरितमानस, महाभारत और कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र आदि में भी संवाद और

सर्वसम्मति निर्माण के अनेको उदाहरण द्रष्टिगोचर होते हैं। यद्यपि प्राचीन भारत में लोकतांत्रिक सिद्धांत समकालीन लोकतांत्रिक प्रणालियों से संरचना में भिन्न हो सकते हैं, परन्तु उनका सार आधुनिक आदर्शों के साथ प्रतिध्वनित होता है। लोकतंत्र जैसा कि भारतीय संदर्भ में समझा जाता है, राजनीतिक संरचनाओं से परे है, इसमें जीवन का एक ऐसा तरीका शामिल है जो सभी व्यक्तियों के कल्याण को प्राथमिकता देता है। "धर्म" की भारतीय अवधारणा न्याय, समानता और सामाजिक कल्याण के सिद्धांतों के समानांतर है जो आधुनिक लोकतांत्रिक शासन का आधार है। धर्म, भारतीय दर्शन का एक केंद्रीय सिद्धांत है, जो धार्मिकता और नैतिक कर्तव्य के विचार का प्रतीक है।[5] यह अवधारणा एक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत समाज को बढ़ावा देती हैं, जहां शासक सभी नागरिकों के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं। धर्म की धारणा स्वाभाविक रूप से निष्पक्ष शासन और समान व्यवहार के महत्व पर जोर देकर लोकतांत्रिक आदर्शों के साथ संरेखित होती है। इन संस्कृत ग्रंथों में निहित सभाएं, परिषदें और न्याय तथा न्यायसंगत शासन पर जिस प्रकार प्रकाश डाला गया हैं, वह लोकतांत्रिक सिद्धांतों की गहन समझ को प्रदर्शित करता है। न्याय और निष्पक्षता की वकालत करने वाले धर्म के सिद्धांतों ने सामाजिक ढांचे को आकार देने, न्यायसंगत उपचार और प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अर्थशास्त्र, जिसका श्रेय चाणक्य को जाता हैं, शासन की एक परिष्कृत समझ प्रस्तुत करता है। यह पंचायत जैसी परिषदों के माध्यम से विकेन्द्रीकृत प्रशासन की वकालत करता है, जो आधुनिक शासन में सहायकता के सिद्धांतों को प्रतिध्वनित करते हुए स्थानीय समुदायों को अपने मामलों को स्वतंत्र रूप से प्रबंधित करने का अधिकार देता है।[6] भारत की लोकतांत्रिक विरासत ने विधानसभाओं और परिषदों के माध्यम से समावेशिता और समाज के विभिन्न वर्गों की भागीदारी पर जोर दिया है।

लोकतंत्र की अवधारणा को मूल रूप से पश्चिमी सभ्यता की देन माना जाता हैं। इस संदर्भ में मूलत विद्वान यह मत देते हैं कि भारत में राजतंत्रात्मक व्यवस्था विद्यमान थी जिस कारण भारत को लोकतंत्र की अवधारणा के साथ नही जोड़ा जा सकता अर्थात भारत में कभी लोकतांत्रिक तत्त्व विद्यमान नही थे। परन्तु वे विद्वान यह भूल जाते हैं कि किसी अवधारणा की शब्दावली मात्र निर्मित कर देने से कोई अवधारणा स्थापित नही हो जाती हैं। आज भारत को जहाँ विश्व में सबसे बड़े लोकतंत्र का दर्जा प्राप्त हैं वहीं भारत विश्व के सबसे प्राचीन लोकतंत्र का दावा भी विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करता हैं, क्योंकि प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथो में अनेक प्रकार की इस तरह की व्यवस्था मिलती हैं जो इस दावे का पुरजोर समर्थन कर सकती हैं।[7] यह प्रश्न कि क्या भारत को लोकतंत्र की जननी माना जा सकता है, इसके उत्तर हेतु निश्चित रूप से प्राचीन यूनान के साथ तुलना की आवश्यकता है, जिसे अक्सर लोकतंत्र की जन्मस्थली का श्रेय दिया जाता है। प्राचीन यूनान का लोकतांत्रिक मॉडल निर्णय लेने में पुरुष नागरिकों की प्रत्यक्ष भागीदारी पर केंद्रित था, वही ऋग्वेद में वर्णित सभा और समिति विभिन्न वर्गों की भागीदारी के साथ–साथ अनेक प्रकार की सामूहिक चर्चाओ का भी उल्लेख प्रस्तुत करती है।. प्राचीन भारतीय गाँव अक्सर पंचायतों, जमीनी स्तर की सभाओं द्वारा शासित होते थे जो निर्णय लेने और विवाद समाधान के लिए जिम्मेदार होते थे। ये परिषदें लोकतंत्र के सूक्ष्म जगत का प्रतिनिधित्व करती थीं, जहां स्थानीय मुद्दों को सामूहिक विचार–विमर्श के माध्यम से सुलझाया जाता था। भारत से एशिया के विभिन्न हिस्सों में बौद्ध धर्म का प्रसार अपने साथ लोकतांत्रिक आदर्शों को भी ले गया। बौद्ध मठ सभाएँ, जहाँ सर्वसम्मति से निर्णय लिए जाते थे, लोकतांत्रिक प्रथाओं को प्रतिबिंबित करती थीं और तिब्बत, श्रीलंका और थाईलैंड जैसे देशों की शासन प्रणालियों को प्रभावित करती थीं।[8] मौर्य शासकों, विशेष रूप से सम्राट अशोक ने करुणा और सामान्य भलाई के लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ तालमेल रखते हुए अहिंसा और सामाजिक कल्याण के सिद्धांतों को अपनाया। इसके उपरांत यदि हम कौटिल्य द्वारा लिखित अर्थशास्त्र की राजव्यवस्था का अध्ययन करते हैं तो, उसमें यह सर्वविदित तथ्य उपस्थित होता है कि कौटिल्य की राजव्यवस्था कल्याणकारी राज्य के बहुत निकट है जो लोकतंत्रात्मक अवधारणा का ही एक तत्त्व हैं।[9] वर्तमान में कल्याणकारी राज्य के बिना हम लोकतंत्र की कल्पना नही कर सकते हैं। भारतीय ग्रंथो की कल्याणकारी राज्य की अवधारणा लोकतांत्रिक विरासत का एक आवश्यक सूत्र है। सामूहिक निर्णय लेने, प्रतिनिधित्व और न्याय की खोज पर भारत की अवधारणा से ही शासन के बारे में दुनिया की समझ समृद्ध हुई है। प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथो में राज्यशिल्प का ऐसा कोई भी सूत्र नही हैं जो विद्यमान ना हो, इनमें राज्य की उत्पत्ति से लेकर शासन के संचालन और आंतरिक व्यवस्था के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय संबंधो के संचालन के परीप्रेक्ष्य में भी महत्वपूर्ण ज्ञान विद्यमान हैं। वैदिक कालीन, बौद्धकालीन एवं अनेक राजव्यवस्थाओं की शासन प्रणाली में राष्ट्राध्यक्ष स्थायी नहीं होते थे, जनकल्याण के आधार पर उन्हें पद से हटाया जा सकता था।

भारतीय प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद से लोकतंत्र के अनेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। राजा को विचार–विमर्श हेतु सभा एवं समिति नाम के संगठनों से सुझाव लेने के उपरांत ही निर्णय लेने की अनुमति ऋगवेद देता है। यह सभा और समिति आधुनिक राजव्यवस्थाओं की मंत्रीपरिषद् के रूप में जन सहभागिता का ही रूप थीं। लोक कल्याण की भावना से युक्त ऋगवेद अनेक स्थानों पर गणतन्त्र शब्द का प्रयोग करता है, यह भारत में लोकतंत्र की प्राचीनता का ही द्योतक है।[10] इसी क्रम में बौद्धकालीन अनेक गणराज्य अपनी लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के रूप में विख्यात हैं, जिसमें वज्जी, वैशाली, सोमबस्ती एवं लिच्छवि जैसे गणराज्य प्रमुख हैं। वैशाली गणराज्य के सर्वप्रथम राष्ट्राध्यक्ष विशाल को निर्वाचन के आधार पर चयनित किया गया था। अन्य उदाहरण के रूप में पाणिनि की अष्टाध्यायी में विभिन्न गणराज्यों का विवरण प्रदान किया गया है, जिसमें जनपद शब्दावली का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है। अष्टाध्यायी में उल्लिखित जनपदों में निर्वाचित शासनाध्यक्षों का वर्णन मिलता है।[11] कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र भी गणतंत्रों के रूप में लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करता है। अर्थशास्त्र के प्रथम पांच अधिकरणों में किया गया राज्यशिल्प का वर्णन, शासन के सुगम संचालन में आमात्यों, विभिन्न विभागाध्यक्षों की महत्ता पर भी जोर दिया गया है।

वर्तमान परिद्रश्य में लोकतंत्र की अवधारणा

वर्तमान विश्व व्यवस्था में शासन के प्रकार और सामाजिक कल्याण की अवधारणा के कारण लोकतंत्र अत्यधिक महत्व रखता है। जैसे–जैसे वैश्विक परिदृश्य तेजी से परस्पर जुड़ा हुआ और जटिल होता जा रहा है, लोकतांत्रिक प्रणाली की महत्ता निरंतर बढती जा रही है, जो स्थिरता, प्रगति और मानवाधिकारों की सुरक्षा में

योगदान करती है। इस शासन प्रणाली के अन्तर्गत निर्णय लेने में आबादी के विभिन्न वर्गों को शामिल करके समावेशिता और सामाजिक एकजुटता को बढ़ावा दिया जाता है और सामाजिक बहिष्कार, भेदभाव और हाशिए पर रहने वाले समूहों को अनसुना आदि किसी प्रकार के भेदभाव का सामना नही करना पड़ता है। जनता के द्वारा चुनी गई सरकारें अपने नागरिकों की नजर में अधिक वैधता रखती हैं। यह वैधता सामाजिक एकता को मजबूत करती है और नागरिक अशांति की संभावना को भी कम करने में मदद करती है। सरकार के लोक कल्याणकारी कार्य, लोक हेतु सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों, शिक्षा, स्वास्थ्य व्यवस्था और गरीबी उन्मूलन आदि को प्राथमिकता प्रदान करते हैं। ये नीतियां लोगों की जरूरतों और आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने की अधिक संभावना रखती हैं। इसमें व्यक्तिगत अधिकारों के साथ–साथ उनकी स्वतंत्रता को भी महत्व दिया जाता है। समाजों में मानवाधिकारों को बनाए रखने और उनकी रक्षा करने के लिए भी इस प्रकार की शासन व्यवस्था अधिक आवश्यक है, क्योंकि कानून का शासन और शक्तियों का पृथक्करण एक ऐसी प्रणाली बनाता है जो शक्ति के केंद्रीकरण को रोकती है और नागरिक अधिकारों के संदर्भ में सरकारों को जिम्मेदार ठहराने में मदद करती है।

नियमित चुनाव और पारदर्शी शासन प्रथाएं यह सुनिश्चित करती हैं कि नेता अपने कार्यों के लिए जवाबदेह हों, भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग को कम करें। लोकतंत्र शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व को बढ़ावा देता है। चूँकि शक्ति संस्थानों और लोगों के बीच वितरित की जाती है, इसलिए संघर्षों को अक्सर शांतिपूर्ण बातचीत, कूटनीति और समझौते के माध्यम से हल किया जाता है, जिससे हिंसक संघर्षों की संभावना कम हो जाती है। नागरिक स्वतंत्रता के अस्तित्व के कारण विचारों की विविधता को प्रोत्साहन मिलता हैं, जो नवाचार और प्रगति को बढ़ावा देते हैं। विचारों और असहमति को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने की क्षमता एक गतिशील बौद्धिक वातावरण की ओर ले जाती है, तेजी से तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण और जटिल चुनौतियों से चिह्नित दुनिया में, लोकतंत्र एक ऐसा ढांचा प्रदान करता है, जो सामूहिक जिम्मेदारियों के साथ व्यक्तिगत अधिकारों को संतुलित करता है। हालाँकि कोई भी प्रणाली खामियों के बिना नहीं है, लोकतांत्रिक शासन स्थिरता, प्रगति और मौलिक मानवीय मूल्यों की सुरक्षा के लिए एक आधार प्रदान करता है, जिससे यह वर्तमान वैश्विक व्यवस्था का एक अनिवार्य घटक बन जाता है।

महाकाव्य महाभारत में वर्णित लोकतंत्रात्मक अवधारणा

महाकाव्य महाभारत भारतीय संस्कृत ग्रंथो की श्रेणी में अत्यंत प्रासंगिक ग्रंथ है। इस आधार पर महाकाव्य महाभारत में वर्णित ज्ञान का विश्लेषण करना महत्वपूर्ण हो जाता हैं। महाकाव्य महाभारत में मूलतः 18 पर्व हैं, परन्तु राजनीतिक ज्ञान के द्रष्टिकोण से शांतिपर्व सबसे आधिक महत्वपूर्ण है। शांति पर्व राजनितिक विचारधारा, सिद्धांतो, जीवन–दर्शन, अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के सूत्रों, आंतरिक तथा बाहय राजनितिक गतिविधियो के संचालन की कलाओं का एक सार संग्रह है। इसमें राज्य की उत्पति के सिद्धांतो, राज्य के अंगो, शासन कला, मंत्री परिषद्, गुप्तचर व्यवस्था सभी का विस्तृत और व्यावहारिक स्वरुप प्रस्तुत किया गया है। महाभारत को पंचम वेद भी कहा जाता है। जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक आदि प्रत्येक पहलुओं पर महाभारत अमूल्य विचारों की एक निधि है। राजनीतिक जीवन के अनेक पक्षों पर महाभारत में सोदहारण विभिन्न कथाएँ और दृष्टांत विद्यमान हैं। महाकाव्य महाभारत के अन्तर्गत राजव्यवस्था के संचालन हेतु अनेकों लोक कल्याणकारी विधियों का उल्लेख किया गया है। शांतिपर्व में पितामह भीष्म युधिष्टिर को राज्य संचालन की अनेकों नीतियों को व्याख्यायित करते हैं कि राजा कैसा होना चाहिए और राजव्यवस्था का स्वरुप किस प्रकार का होगा, जिसमे वे लगभग सभी प्रकार की राजव्यवस्थाओं का वर्णन करते हैं। परन्तु आंतरिक संचालन व्यवस्था का स्वरुप चाहे जैसा भी हो राजा के द्वारा लोकहित को प्राथमिकता प्रदान करते हुए ही शासन करना चाहिए। भीष्म जी युधिष्टिर को बताते हैं कि शासन व्यवस्था के संचालन में प्रजा की भागीदारी राजव्यवस्था को सुदृढ़ रूप प्रदान करती है। महत्वपूर्ण विषयों पर मंत्रणा का भी महत्व बताया गया है। महाकाव्य महाभारत के शांति पर्व में अनेक ऐसी अवधारणा और सूत्र मिलते हैं जो लोक कल्याणकारी राज्य स्थापित करने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि महाकाव्य महाभारत में मूलतः लोकतंत्र शब्द का प्रयोग नही किया गया हैं उसमें लोकतंत्र के स्थान पर गणतंत्र शब्द का प्रयोग हुआ है। गण मूलतः स्थानीय स्तर पर होते हैं, गण से मिलकर संघ बनता हैं संघबद्धता ही गणतंत्र का आधार बताइ

ं गयी हैं।[12] इसमें राजा समस्त लोक (गण) की चिंता करता है अर्थात उनके कल्याण हेतु निरंतर प्रयासरत रहता है। महाकाव्य महाभारत में लोकतंत्र की अवधारणा का प्रारम्भ राज्य के अंगो के निर्धारण के साथ ही प्रारम्भ हो जाता हैं, जिसमें राजा (राष्ट्राध्यक्ष) के उपरांत राज्य का दूसरा अंग अमात्य (मंत्री) को बताया गया हैं क्योंकि मंत्री स्वयं में विमर्शदात्री संस्था है जिस पर राज्य संचालन व्यवस्था अवलम्बित हैं। महाकाव्य महाभारत की राजव्यवस्था अनेक प्रकार से लोकतंत्रात्मक तत्वों को स्वयं में समाहित किये हुए हैं क्योंकि उसमें जहाँ स्थानीय स्तर पर गणों का वर्णन मिलता हैं वही राजा की राज–सभा में जनसदन नामक संस्था हैं, जिसके माध्यम से अलग–अलग विषयों पर मंत्रणा और विचार विमर्श किया जाता है। शांतिपर्व में पितामह भीष्म राजा युधिष्ठिर को विस्तारपूर्वक गणतंत्र राज्य की विशेषताओं का वर्णन कर रहे हैं, यह मूल रूप से भारत की लोकतंत्र संबंधी अवधारणा ही हैं जो निम्न प्रकार हैं–

गणतंत्र राज्य जब एक संघ में संघबद्ध होकर रहना स्वीकार करते हैं तो सर्वप्रथम उन्हें अपने गणतंत्र के अंतर्गत आपसी सहमति अवश्य स्थापित करनी चाहिए। यदि गणों की आंतरिक संचालन व्यवस्था में आपसी संघर्ष चल रहे हैं तो यह गणतंत्र की भावना के अनुकूल नही है और यह उन गणों के विनाश का कारण बन जाता है।[13] आपस में शान्ति स्थापित करते हुए संघबद्धता का परिचय देते हुए गणतंत्र में निवास करे। गणों को चाहिए कि वे व्यक्तिगत स्वार्थ अर्थात लोभ और अमर्ष से दुरी बनाये रखे जब लोभ प्रभावी होता हैं तो गणतंत्रात्मक व्यवस्था एक दुसरे के विनाश का कारण बन जाती हैं।[14] गणराज्य के सन्दर्भ में उसके सुरक्षा स्तंभ अर्थात् सैनिकों के उचित प्रबंधन का भी वर्णन किया गया है। राजा को सैनिकों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने के सभी संभव प्रयास करने चाहिए क्योंकि जब सैनिकों की आवश्यकताएँ समय से पूर्ण होती रहती हैं तब वे अपने दायित्वों का निर्वहन नैतिकता पूर्वक करते हैं। यदि गणराज्य के सैनिकों में वेतन और अन्य मूलभूत सुविधाओं को लेकर रोष उत्पन्न हो जाये तो वह गणराज्य के पतन का कारण बन जाता है क्योंकि

संभवतः दोनों एक दूसरे के विपरीत आचरण करने लगते हैं जिस कारण बाहरी लोग अर्थात् राज्य उनमें फूट डालकर उनको अपने अधीन करने के प्रयास करते हैं।[15] महाभारत में गणराज्यों के विनाश का मूल कारण आंतरिक संघर्षों को ही बताया गया है। इस विनाश से बचने के लिए गणों को हर संभव प्रयास के माध्यम से अपने एकमत को सुनिश्चित रखना चाहिये।

इसके उपरांत गणराज्य की आंतरिक संचालन व्यवस्था यदि सुदृढ़ है और उनमें कोई मतभेद नहीं है, तो उस स्थिति में गणराज्य को क्या–क्या लाभ मिलते हैं, इसका भी वर्णन महाभारत में भलि–भांति किया गया है। शान्ति पर्व में उल्लेख किया गया है कि जब गणराज्य की आंतरिक संचालन व्यवस्था अच्छी तरह से चलती है तो अन्य बाहरी लोग (राज्य) भी उनसे मित्रता स्थापित करते हैं जो उनको अनेक प्रकार से सुदृढ़ एवं संपन्न बनाती हैं तथा उनकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ती जाती है। गणराज्य के नागरिकों के कृत्यों को दिशा–निर्देशित करने के लिए महाभारत शास्त्र अर्थात् धर्मानुकूल व्यवहार का वर्णन करता है। यहाँ धर्म से तात्पर्य किसी धर्म विशेष से नहीं लिया जाना चाहिए। धर्म वह है जो धारण करने योग्य हैं अर्थात् उचित व्यवहार। शास्त्र और धर्म गणराज्य के नागरिकों में समानता को विकसित करने का प्रयास करते हैं अर्थात् सबके लिए समान विधान। जब उचित और अनुचित के निर्धारण की स्थिति उत्पन्न होती है तो इस परिस्थिति में गणराज्य को अपने और अन्य में भेद ना करते हुए एक आदर्श व्यवहार को अपनाना चाहिए जिसमें दंड का निर्धारण अपराध के अनुरूप समानता के आधार पर ही होना चाहिए।[16] गणराज्य में व्यक्ति विशेष का सम्मान उसके ज्ञान और विशेषज्ञता के आधार पर ही होता है, जिससे गणराज्य निरंतर उन्नति की तरफ अग्रसर होता दिखाई पड़ता है।

गणराज्य के अधिकारी स्वयं पर लोक यात्रा का भार वहन करते हैं अर्थात् लोक में समन्वय की स्थापना करते है, जिस कारण राजा को भी उनका सम्मान करना चाहिए। गणराज्य के सभी सदस्य उद्यमशील बने रहकर ही अपने कर्तव्यों का निष्पादन करते हैं। गणराज्य के नागरिक गुप्तचर का भी कार्य करते हैं। अर्थात् राष्ट्रहित में अनेकों भेदों का भी पता लगाते हैं।[17] राज्य के हित हेतु गुप्त मंत्रणा और विधान बनाने में विमर्षदाता के कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। राज्य की अर्थव्यवस्था निरंतर सुचारू रूप से चलती रहे उस हेतु गणतंत्र के नागरिक कोष के लिए उद्यमशीलता को बढ़ाने हेतु प्रयासरत रहते हैं। इस प्रकार स्पष्टतः समझा जा सकता है की गणतंत्र के नागरिक उन सभी कार्यों को करते थे जो वर्तमान लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के सुचारू संचालन में आवश्यक है।

गणतंत्रात्मक राज्य के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने सुचारू संचालन व्यवस्था के लिए जो धन, बल और संसाधन एकत्र करे उनका किसी भी स्थिति में दुरुपयोग ना करे। यदि संघ में रहने वाले ये राज्य दूसरों में फूट डालने, उन पर अनावश्यक बलप्रयोग करने, उनको दुर्बल बनाने के प्रयास करे और यह चाहे कि मैं अन्य राज्य पर स्वयं का आधिपत्य स्थापित करूँ, तो यह गणतंत्र की अवधारणा के विरुद्ध है और स्वयं उसी के पतन का कारण बन सकता है। इसमें महाभारत सैद्धांतिक रूप से शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को स्वीकार करता है जो वर्तमान लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था का भी एक मूल बिंदु है। शांति पर्व स्पष्ट रूप से इस तथ्य की व्याख्या करता है कि गणराज्य के निर्माण हेतु एक जाति अथवा कुल का होना पर्याप्त नहीं है अपितु इसमें नागरिकों का बौद्धिक विकास बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। उचित प्रकार से ज्ञानवान नागरिकों में आपसी फूट डालना किसी राज्य के लिए दुरूह हो जाता है जिसका प्रभाव यह होता है कि गणतंत्र सुचारू रूप से कार्य संचालन करता है।

महाकाव्य महाभारत में अनेको उदाहरणों में राजा युधिष्ठिर द्वारा महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पहले, मंत्रियों और उन सभी राजाओ से सलाह ली जाती हैं जो उनके पक्ष में है। महाराज युधिष्ठिर जब वनवास और अज्ञातवास पूरा होने के बाद युद्ध को ही अंतिम विकल्प के रूप में देखते हैं परन्तु उस परिस्थिति में भी राजा युधिष्ठिर इस समस्या के समाधान हेतु किसी शांतिपूर्ण उपाय के लिए अपने पक्ष के सभी लोगों को एकत्र करके समाधान का प्रस्ताव रखते हैं। इस विचार–विमर्श के परिणाम स्वरुप ही हस्तिनापुर में शांति प्रस्ताव भेजा जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था निश्चित रूप से एक लोककल्याणकारी शासन व्यवस्था की तरफ संकेत करती है। यह परामर्शात्मक दृष्टिकोण लोकतांत्रिक आदर्शों के अनुरूप है, जहां राष्ट्राध्यक्ष निर्णय लेने से पहले विविध दृष्टिकोणों पर विचार करते हैं। महाभारत विभिन्न सामाजिक समूहों के समावेश और निर्णय लेने में उनकी भागीदारी को दर्शाता है। कौरव और पांडव के राज–दरबार में विभिन्न पृष्ठभूमि के सलाहकार, और मंत्री शामिल थे। हस्तिनापुर के मुख्यमंत्री विदुर जी की संपूर्ण नीति राजा को कल्याणकारी सलाह देती है, जो राष्ट्र को केंद्र में रखकर तथा जनमत को आधार मानकर ही कोई भी निर्णय लेने का समर्थन करती थीं।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय साहित्य के कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथो का अध्ययन करने के उपरांत यह कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा सभी प्रकार के ज्ञान का अमूल्य भंडार हैं जिसमें राजनीति के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों के अलावा राज्य संचालन व्यवस्था के सबसे प्रसिद्ध स्वरुप लोकतंत्र के तत्वों का भी व्याख्यान मिलता हैं। उपरोक्त विवरण के आधार पर यह समझ सकते हैं कि ऋग्वेद से लेकर बौद्धसाहित्य तक अनेक प्रकार से लोकतंत्र के तत्वों को समाहित किया गया हैं। महाकाव्य महाभारत में लोकतंत्र के संचालन हेतु अनेक आवश्यक तत्वों को व्याख्यायित किया गया हैं, जिनके आधार पर एक सुदृढ़ और कल्याणकारी व्यवस्था स्थापित होती हैं। महाभारत, अपने पौराणिक और आध्यात्मिक महत्व के अतिरिक्त शासन, नेतृत्व और निर्णय लेने की अंतर्दृष्टि प्रदान करता है जो लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप है। हालांकि यह एक राजनीतिक ग्रंथ नहीं है, परन्तु पाठकों को प्राचीन भारतीय साहित्य के जटिल ढांचे में नैतिक शासन और लोकतांत्रिक मूल्यों के सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तित्व पर विचार करने के लिए अपनी तरफ आकर्षित करता है। यह शासन व्यवस्था में लोक की सहभागिता को प्रदर्शित करते हुए लोकतंत्र की भारतीयता का अप्रतिम उदाहरण है। महाकाव्य उन उदाहरणों पर भी प्रकाश डालता है जहां शासक अपनी प्रजा के प्रति जवाबदेह होते हैं। महाभारत के पात्र जनमत के प्रति संवेदनशील हैं, जो शासन में नागरिकों की आवाज की भूमिका को दर्शाते हैं। युद्ध में लड़ने के लिए अर्जुन की झिझक और कृष्ण की सलाह निर्णय लेने पर सार्वजनिक भावना के प्रभाव को रेखांकित करती है। ऐसे अनेक उदाहरण ऋग्वेद, बौद्ध साहित्य, मनुस्मृति, कामंदक के नीतिसार एवं कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र से प्राप्त होते हैं, जिसमें निर्णय निर्माण हेतु राष्ट्राध्यक्ष को सुझाव प्रदान करने के लिए विभिन्न सभाओं, विभागों अथवा

समितियों का विवरण समाहित है। जनकल्याण की भावना से युक्त शासन में विभिन्न विभागों के अन्तर्गत जनसमूह को भी सम्मिलित किया जाना प्राचीन भारतीय राजतंत्र में लोकतंत्र के समावेशन को प्रदर्शित करता है। अतः यह स्पष्ट है कि भारत के प्राचीनतम ग्रंथों में वर्णित गणतंत्र एवं शासन व्यवस्था के सिद्धान्त लोकतंत्र के भारतीय आधार है। यह समावेशिता और विशेषज्ञता आधारित प्रतिनिधित्व के लोकतांत्रिक सिद्धांतों को प्रतिबिंबित करता है। उपरोक्त वर्णित उदाहरण भारत को लोकतंत्र की जननी के रूप में दृ श्यमान करते हैं।

संदर्भ

1. लैण्डमैन, डॉ. टॉड. (2007). डेवलपिंग डेमोक्रेसीरू कॉनसेप्ट्स, मेजर्स एण्ड एम्पिरिकल रिलेशनशिप्स. इंटरनेशनल आईडीईए.
2. पिल्लालमर्री, अखिलेश. (2023). इज इण्डिया द 'मदर ऑफ डेमोक्रेसी'?. द डिप्लोमेट.
3. शर्मा, संजीव कुमार. (2005). एन्सिएंट इण्डियन डेमोक्रेसी. इण्डियन जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, एएमयू, 155–166
4. भट्ट, जानकी नाथ. (1954). एन्सिएंट इण्डियन डेमोक्रेसिज. इंस्टिट्यूट डी सोशियोलॉजी डी, यूनिवर्सिटी डी ब्रक्सेल्स, 51–59
5. सोइन, ऋद्धिमा. (2019). मनुस्मृति: ए मॉडर्न पर्सपेक्टिव. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च कल्चर सोसाइटी, 37–40
6. तिवारी, डॉ० एसके. (2020). कौटिल्यीय अर्थशास्त्रम. (जीपी शास्त्री, अनुवाद). वाराणसी: चौखंबा सुरभारती प्रकाशन.
7. पिल्लालमर्री, अखिलेश. (2023). इज इण्डिया द 'मदर ऑफ डेमोक्रेसी'?. द डिप्लोमेट.
8. कुमार, रिआन. (2022). रिफ्लेक्शंस ऑफ बुद्दीज्म ऑन मॉडर्न डेमोक्रेसी– ए 21 सेंचुरी पर्सपेक्टिव. जर्नल ऑफ ह्युमानिटीज एण्ड सोशल साइंस, खण्ड 27, प्रकाशन 1, 1–11
9. तिवारी, डॉ. एसके. (2020). कौटिल्यीय अर्थशास्त्रम. (जीपी शास्त्री, अनुवाद). वाराणसीः चौखंबा सुरभारती प्रकाशन.
10. भट्ट, जानकी नाथ. (1954). एन्सिएंट इण्डियन डेमोक्रेसिज. इंस्टिट्यूट डी सोशियोलॉजी डी, यूनिवर्सिटी डी ब्रक्सेल्स, 51–59
11. अग्रवाल, वी. एस. (1952). इंडिया ऐज नोन तो पाणिनि. इलाहाबादः इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस.
12. व्यास, वेद. (2019). महाभारत, खण्ड 5 शान्तिपर्व (पाण्डे, रामनारायण, अनुवाद). गोरखपुरः गीताप्रेस गोरखपुर. 337,8
13. व्यास, वेद. (2019). महाभारत, खण्ड 5 शान्तिपर्व (पाण्डे, रामनारायण, अनुवाद). गोरखपुरः गीताप्रेस गोरखपुर. 337,8
14. व्यास, वेद. (2019). महाभारत, खण्ड 5 शान्तिपर्व (पाण्डे, रामनारायण, अनुवाद). गोरखपुरः गीताप्रेस गोरखपुर. 338,11
15. व्यास, वेद. (2019). महाभारत, खण्ड 5 शान्तिपर्व (पाण्डे, रामनारायण, अनुवाद). गोरखपुरः गीताप्रेस गोरखपुर. 338,13
16. व्यास, वेद. (2019). महाभारत, खण्ड 5 शान्तिपर्व (पाण्डे, रामनारायण, अनुवाद). गोरखपुरः गीताप्रेस गोरखपुर. 338,18
17. व्यास, वेद. (2019). महाभारत, खण्ड 5 शान्तिपर्व (पाण्डे, रामनारायण, अनुवाद). गोरखपुरः गीताप्रेस गोरखपुर. 338,19